Chapter-1

S. T. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

प्रथम अध्याय

दलित की व्याख्या, स्वरुप एवं सीमा विस्तार

SHRI HANSA MEHTA LIBRARY

प्रस्तावना

(क) दलित की व्याख्या

(ख) दलित शब्द का अर्थ

- संस्कृत शब्दकोश
- मराठी शब्दकोश
- हिन्दी शब्दकोश

(ग) दलित की परिभाषाएँ

(घ) इतिहास

- वैदिक समाज
- उपजातियों का विकास
- जातिप्रथा की उत्पत्ति
- मुस्लिम आक्रमण के पूर्व की स्थिति
- ब्रिटिश शासनकाल में दलितों की स्थिति
- स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् की स्थिति

(ङ) 'दलित' शब्द ऐतिहासिक संदर्भ में

- शूद्रों में जन्में विद्वान
- आधुनिककाल में 'दलित' शब्द का प्रयोग

(च) 'दलित' शब्द की उत्पत्ति और वर्ण-व्यवस्था

- असुर
- दास-दस्यु
- वर्ण-व्यवस्था एवं जाति प्रथा
- वर्णभेद और रंगभेद
- वर्ण-व्यवस्था जन्मगत या कर्मगत
- वर्ण-परिवर्तन, खान-पान
- 'विश्व दलित' और 'दलित भारत'

(छ) दलित वर्ग के उत्थान संबंधी आंदोलन

- धार्मिक प्रयास
- भक्ति आंदोलन
- ब्रह्मसमाज

- प्रार्थनासमाज
- आर्यसमाज
- रामकृष्ण मिशन
- थियोसोफिकल सोसायटी
- महात्मा गांधी जी
- ज्योतिबा फूले
- डॉ. भीमराव रामजी अम्बेड़कर
- महाराजा सयाजीराव गायकवाड
- स्वातंत्रवीर सावरकर

प्रस्तावना :

हमारी बौद्धिक दासता यही रही है कि सिर्फ 'दलित' पिछ़डे वर्ग के लोग ही है, लेकिन यह मान्यता सरासर गलत है । वर्तमान समय में 'दलित' की परिभाषा बदल गई है । हमें भी इन परिभाषाओं के अवगत होना जरूरी हो गया है, क्योंकि हमें समय के साथ चलना है । समय रूकता नहीं है। समय की पुकार है कि 'दलित' शब्द को संकुचित दृष्टि से न देखते हुए विशाल रूप में वैश्विक धरातल पर देखें । हम दलित की अधिक जानकारी पाने के लिए दलित की व्याख्या से परिचित होंगे ।

(क) दलित की व्याख्या :

आधुनिक काल में स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में 'दलित' शब्द का विशेष अर्थ प्राप्त हो रहा है । 'दलित' शब्द को लेकर साहित्य में विद्वानों में मतभेद हैं ।

शब्दकोश के अनुसार **'दलित'** शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ मिलते है । जैसे - हरदेव बाहरी के **'हिन्दी शब्दकोश'** के अनुसार दलित का अर्थ है - कुचला हुआ, दबाया हुआ । तो कहीं 'दलित' शब्द को इस रूप में दिया है - दल उक्त अर्थात् टूटा हुआ, चीरा हुआ, फटा हुआ, टुकड़े-टुकड़े हुआ । 'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत धातु 'दल' से हुई है । हिन्दी शब्दकोश में भी 'दलित' शब्द का अर्थ विनिष्ट किया हुआ ऐसा ही दिया हुआ है जैसे -

- मसाल हुआ, मर्दित
- दबाया, रौंदा या कुचला हुआ
- खंडित
- विनिष्ट किया हुआ आदि ।

अमेरिकन विदूषी एलनार जिलियट ने 'दलित' शब्द की संज्ञा के बारे में लिखा -

Dalit is a comman identy of those Indians who are particular socially neghected untocuhables suppressed and backward.[1]

भारत में 'दलित' शब्द का प्रचलन कब और कैसे हुआ ? यह भी जानना अनिवार्य है । एक विशिष्ट प्रकार की अनुभूति करनेवाला समाज ही 'दलित' है । इस प्रकार की घोषणा करते हुए कुछ चिंतक इस विवाद से हट जाना चाहते है, जिससे पाठक भ्रमित हो जाते हैं । इस विशिष्ट प्रकार की सामाजिक स्थिति का क्या तात्पर्य है ? इस बात को समझ लेना आवश्यक है । सरकार ने

'डिप्रेस्ड्क्लास' शब्द का प्रयोग किया जिसका अर्थ है 'पददलित' । वास्तव में पददलित शब्द 'दलित' शब्द के लिए ही पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । इसी समय भारत में समाजवादी विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ और इस विचारधारा के अंतर्गत आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से जो वर्ग दबा हुआ, कुचला हुआ एवं शोषित है ऐसे वर्ग को महत्व प्राप्त हुआ और उस वर्ग को ही 'दलित वर्ग' के रूप में देखा गया। विशिष्ट प्रकार की सामाजिक स्थिति को इस वर्ग व्यवस्था अथवा जातिभेद और आर्थिक असमानता के संदर्भ में देख सकते है, क्योंकि शोषण सिर्फ सामाजिक या आर्थिक ही नहीं होता ।

इक्कीसवीं सदी का 'दलित' शब्द आधुनिक है लेकिन 'दलितपन' प्राचीन है । प्राचीन साहित्य में शूद्र, अतिशूद्र, चांडाल, अत्यंज आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है जबकि ये सभी शब्द दलित के पर्याय है । अस्पृश्य शब्द का अर्थ स्पर्श करने में अपात्र होने के कारण धृणास्पद हो गया । बाद में पंचम, हरिजन, बहिष्कृत जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ । ये सारे शब्द 'दलित' शब्द के ही बदले हुए रूप हैं । इस प्रकार 'दलित' शब्द के अनेक रूप समाज में प्रचलित थे किंतु आधुनिक संदर्भ में सिर्फ 'दलित' का ही प्रयोग प्रचलित है ।

'दलित' का शाब्दिक अर्थ है - कुचला हुआ । अत: दलित वर्ग का सामाजिक संदर्भ में अर्थ होगा वह जाति समुदाय जो अन्यायपूर्वक सवर्णो या उच्च जातियों द्वारा दमित किया गया है, रौंदा गया हो । दलित शब्द व्यापक रूप में पीड़ित के अर्थ में आता है, पर 'दलित' वर्ग का प्रयोग हिन्दू समाज-व्यवस्था के अंतर्गत परंपरागत रूप में शूद्र माने जानेवाले वर्गो के लिए रूढ़ हो गया है ।

(ख) दलित शब्द का अर्थ :

डॉ. आनंद वास्कर के मतानुसार - गांधीजी ने 'हरिजन' श्री मगाटेने 'अस्पृश्य' और डॉ. अम्बेड़कर ने 'बहिष्कृत' और 'अछूत' शब्द प्रयोग किया है। प्राचीन साहित्य में शूद्र, चांडाल, अत्यंज आदि शब्दों का प्रयोग किया है। भारत में 50-60 साल पूर्व से 'दलित' शब्द का प्रयोग हो रहा है । दलित की व्युत्पत्ति संस्कृत धातु 'दल' से हुई है । 'दल' के विभिन्न अर्थ है जैसे –

संस्कृत शब्दकोश :

- दल - अविकसित, फटना, खंडित होना ।
- दल - (सक) चूर्ण करना, टुकड़े करना ।
- दल - (नपृ) सैन्य, लश्कर, पत्र, पत्ती ।
- दल - (दलित)

दलित - टूबर्स्ट, ओपन स्पिलट क्लेव ।

"दलित हृदयं गाढीद्वैग द्रिधा तू न विद्यते"

(वेदनाओं के कारण हृदय के टुकड़े-टुकड़े होते हैं, नाश नहीं)

(दलित पी.वी. ब्रोकन, टार्न, बर्स्ट, रेन्ट, रिफ्लेट)

संस्कृत शब्दकोश की तरह ही मराठी शब्दकोश में भी 'दलित' शब्द का अर्थ विनष्ट किया हुआ है जैसे –

मराठी शब्दकोश :

- दल - नाश करने (विनष्ट करना)
  दलित - नाश पाववेला (विनष्ट हुआ)
  दीन - दलित - सामानार्थी शब्द[2]
- दलित - तुंडविलेल चुरडलेले मोडलेले

अंग्रेजी डिप्रेस्ड क्लासेस या शब्दास प्रतिशब्द ।

संस्कृत तथा मराठी शब्दकोश की तरह हिन्दी शब्दकोश में भी 'दलित' शब्द का अर्थ विनिष्ट किया हुआ है जैसे –

हिन्दी शब्दकोश :

दलित वि. (सं) (स्त्री दलित)

- मसला हुआ, मर्दित ।
- दबाया, रौंदा हुआ या कुचला हुआ ।
- खंडित ।
- विनिष्ट किया हुआ ।

दलित शब्द का अर्थ विभिन्न शब्दकोश में विभिन्न रूपों में प्राप्त होता है । ई.स. 1933 में सरकार ने जातीय निर्णय लिया था उसमें 'डिप्रेस्ड क्लासेस' शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है पददलित । वास्तव में पददलित शब्द दलित शब्द के लिए ही पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।

(ग) दलित की परिभाषाएँ :

विभिन्न विचारकों ने 'दलित' शब्द की विभिन्न परिभाषाएँ की है । जैसे –

– दलित शब्द को अस्पृश्य के स्थान पर अपनाया । अस्पृश्य शब्द की जो व्याख्या उन्होंने "The Untouchable" नामक अपने अंग्रेजी ग्रंथ में दिया है । डॉ. अम्बेड़कर ने गिरिजन विमुक्त जातियाँ, अपराधी घोषित की हुई जातियाँ ex-criminel tribes (denotifide) और अछूत इन तीनों समुदायों को अस्पृश्य (दलित) कहा है ।" उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार 'दलित' शब्द में शोषित, पीड़ित और आर्थिक दृष्टि से दुर्बल सभी वर्गो का समावेश हो जाता है ।

डॉ. अम्बेड़कर

– 'दलित' वह है जो वर्णव्यवस्था और उसकी मानसिकता को ध्वस्त कर देना चाहता है । दलित इस विश्व और जीवन को नये रूप में ढालना चाहता है जिसके हाथों को इस युग ने प्रज्ञावंत-प्रलयकारी बनाने के लिए शस्त्रों तथा शास्त्रों को उपलब्ध कर दिया है ।

बाबूराव बागुल [3]

– 'अनुसूचित जातियाँ', बौद्ध, श्रमिक, मज़दूर, भूमिहीन किसान, गरीब किसान और खानाबदोश जातियाँ, आदिवासी आदि सभी 'दलित' है ।

नामदेव ढसाळ [4]

– आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े हुए वर्ग को मिलाकर एक सर्व समावेशक दलित वर्ग माना जाना चाहिए जिसमें मज़दूर किसान, मज़दूर श्रमिक और अस्पृश्य और जिनका शोषण होता है वे सभी सामिल है ।

सदा कराड़े [5]

– दलित साहित्य आंदोलन को शोषितों के साहित्यिक आंदोलन से संबोधित करना चाहिए । इस प्रकार आर्थिक रूप से शोषित ब्राह्म वर्ग का दलितों में समावेश करना पड़ेगा । मेरे विचार में जाति वर्ग के रूप में दलित शब्द की व्याख्या करनी चाहिए ।

म. भी. चिटणीस [6]

– मनुष्य के रूप में उसकी प्रतिष्ठा को नकारा गया है और जिन्हें सन्मान की जिन्दगी बसर करने से वंचित रखा गया है, वे दलित हैं ।

डॉ. माण्डे [7]

Dalit is not a Caste Dalit is a symbol of change of the revolution Dalit doese belive in humanlism. He rejects existence of God rebirth soul sacred books which teach discrimination fate heaven because they have made him a salve L. K. Goswami more ever Dalit are those who are kept miles away from power, wealth, status and prastige in society their life was so far ignored by literary aritists.

श्री गंगाधर पान तावळ [8]

'दलित' यानी अनुसूचित जातियाँ, बौद्धिक कष्ट उठानेवाली जनता, मज़दूर भूमिहीन गरीब किसान, खानाबदोश जातियाँ आदिवासी दलित शब्द की यह जाति निरपेक्ष व्यापक परिभाषा है । गांधीजी ने जिन जातियों को 'हरिजन' कहा था वे ही जातियाँ 'दलित' के नाम से पहचानी गई '।

डॉ. चंद्रकांत बाँदीवडेकर[9]

'दलित' शब्द का प्रयोग इसलिए किया जाता है कि अग्रसर हिन्दू जातियों ने और इन्हीं की कुटिल नीति में पड़कर पिछड़ी हिन्दू जातियों ने भी इस बेचारों के समस्त धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक अधिकारों को कुचल डाला है कि मनुष्य होते हुए भी उनकी अवस्था कुत्ते, बिल्ली और मक्खी-मच्छर से भी निम्न मानी गई है ।

स्वामी बोघानंद [10]

'दलित' शब्द भाषावाद, जातिवाद और क्षेत्रवाद को नकारता है तथा पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है । दलित शब्द उन्हें सामाजिक पहचान देता है जिनकी पहचान इतिहास के पृष्ठों से सदा-सदा के लिए मिटा दिया है ।

श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि [11]

'ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के अलावा समस्त हिन्दू समुदाय दलित वर्ग के अंतर्गत ही माना जाता है । दलित वर्ग में इस्लाम धर्म अंगीकार करनेवाले, बौद्ध या ईसाई धर्म ग्रहण करनेवाले दलित वर्ग के लोग ।'

श्री रामलाल विवेक [12]

'दलित' वह है जिसका दलन किया गया हो, 'उपेक्षित', अपमानित, प्रताड़ित, बाधित और पीड़ित व्यक्ति भी दलित की श्रेणी में आते हैं । भूमिहीन, अछूत, बंधुआ, दास, गुलाम, दीन और पराश्रित-निराश्रित भी

'दलित' ही है । 'दलित' शब्द जहाँ व्यक्ति को अपनी अस्मिता, स्वाभिमान और अपने गौरवमय इतिहास पर दृष्टिपात करने को बाध्य करता है, वहीं अपनी अवगति वर्तमान स्थिति और तिरस्कृत जीवन के विषय में सोचने के लिए भी विवश करता है । 'दलित' शब्द आक्रोश, चीख़, वेदना, पीड़ा, चुभन, घुटन और छटपटाहट का प्रतीक है ।

डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर[13]

'दलित मानवीय प्रगति में सबसे पीछे पड़ा हुआ और पीछे ढकेला गया सामाजिक वर्ग है । महाराष्ट्र के हिंदू समाज में महार, चमार, डोम इत्यादि जातियों को गाँव के बहार रहने के लिए बाध्य किया गया और जिनसे समाज, विशेषतः सवर्ण समाज शारीरिक सेवाएँ तो लेता रहा लेकिन जीवनावश्यक प्राथमिक जरूरतों से भी जिन्हें जान-बूझकर वंचित रखा गया और पशुओं के स्तर पर घृणित जीवन जीने के लिए बाध्य किया गया, उनकों 'दलित' या 'अछूत' कहा गया ।'

श्री लक्ष्मण शास्त्री जोशी [14]

जो दलित है, पीड़ित है - वंचित है चाहे वह व्यक्ति हो या समूह उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है ।

प्रेमचंद [15]

दलित यानी कि केवल अनुसूचित जाति, उपजाति नहीं बल्कि सभी शोषित दलित है ।

मार्क्सवादी समीक्षक

दलित शब्द की परिभाषा केवल बौद्ध अथवा पिछड़े हुए नहीं बल्कि जो भी शोषित श्रमजीवी हैं, वे सभी दलित परिभाषा में सम्मिलित है ।

म. ना. बानखेड़े

(घ) इतिहास :

भारत वर्ष की सभ्यता और संस्कृति विश्व की प्राचीनत्तम संस्कृतियों में से एक है । हम जब वर्तमान जाति व्यवस्था और दलित वर्ग के इतिहास पर एक नज़र डालना चाहेंगे तो हमें निश्चित रूप से पिछले पाँच हज़ार वर्षो का लेखा-जोखा विस्तृत रूप से करना होगा । आर्य, अनार्य, असुर, गंधर्व, दैत्य, दानव आदि जातियों की संस्कृति से लेकर वर्तमान रूढ़ जाति व्यवस्था की सामाजिक यात्रा का आकलन करना होगा ।

वैदिक समाज :

वैदिक समाज में जातियों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था । उस काल में वर्ग-व्यवस्था थी वर्ण चार थे - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । कतिपय विद्वानों के मतानुसार शूद्र वर्ण सेवाकर्मी और साधन-हीन होने के कारण अथर्ववेद की रचना के समय निम्न वर्ण में गिना जाने लगा ।

समाज को एक पुरुष रूप में मानकर वैदिक ऋषि ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदि का स्थान इस प्रकार व्यक्त किया है -

"ब्राह्मणोस्य मुखपासीद बाहू राजन्यः कृतः ।

अरु तदम्य यद्येश्यः पदभ्या शूद्रोड़जायत ।।"[16]

(अर्थात् समाजरुपी पुरुष के लिए ब्राह्मण मुख रूप से, क्षत्रिय बाहू रूप से, वैश्य अरु (जांध) रूप से और शूद्र पाद रूप से विकसित हुए ।)

इस सूक्त में समाज सौष्ठव के लिए चारों वर्णों का एक मन होकर कर्तव्य का पालन करना आवश्यक बताया गया है ।

उच्च वर्णों की सेवा करनेवाले सामाजिक वर्ग के रूप में शूद्रों का प्रथम और एकमात्र उल्लेख ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में आया है जिसकी पुनरावृति अर्थववेद के उन्नीसवें भाग में हुई है । ऋग्वेदकालीन समाज में कुछ दासियाँ होती थी जो घरेलू नौकर के रूप में कार्य करती थी पर उनकी संख्या इतनी नहीं थी कि उनको मिलाकर शूद्रों का दास वर्ण बन पाता ।[17]

डॉ. अम्बेड़कर की मान्यता यह रही है कि ब्राह्मणों व क्षत्रियों के पारस्परिक संघर्ष में जो वर्ग अशक्त हो गया वह शूद्रों में परिगणित होता चला गया ।[18]

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में शूद्र वर्ग को पैरों से विकसित वर्णित करने मात्र से यह अर्थ नहीं निकलता कि शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्ण से निम्न स्थिति में परिगणित होते थे । शरीर में पाँवों का महत्व किसी भी प्रकार सिर, बाहू एवं जंधाओं से कम नहीं होता । मात्र पैरों से विकसित होने के आधार पर शूद्रों को निम्न वर्ग में परिगणित करने संबंधी मत तर्क सम्मत नहीं कहा जा सकता ।

विद्धज्जनों के मत वैभिन्य पर विस्तृत विवेचन न करके तर्कसंगत निष्कर्ष पर पहुँचे तो यही सत्य के अधिक निकट प्रतीत होता है कि आर्यो के आंतरिक व ब्राह्य संघर्ष में जो व्यक्ति साधनहीन होते चले गए वे चतुर्थ वर्ण शूद्रों में परिगणित होते चले गए ।

उपजातियों का विकास :

वैदिक काल में चार वर्णो में समाज व्यवस्था विभक्त थी किंतु कार्यो की विभिन्नता के कारण उनके कर्मानुसार पृथक नामकरण हुए । ऋग्वेद में वप्ता (नाई), त्वष्टा (बढ़ई), भिषक (वैद्य), कमरि (लोहार), चर्मनी (चमार) आदि शब्द आए हैं ।[19] यज्ञ में 16 पुरोहित 16 कार्यों में नियोजित होते थे । इस प्रकार कालान्तर में कार्य के अनुसार उपजातियों का विकास हुआ ।

जातिप्रथा की उत्पत्ति :

जाति प्रथा की उत्पत्ति और विकास की गहराई में जाते हुए डॉ. अम्बेड़कर ने बताया - 'जाति एक परिवेष्टिन' वर्ग है और सतीप्रथा, प्रवर्तित विधवापन एवं बाल विवाह का प्राधान्य रहा है, इस प्रकार वर्ग जाति संस्था का जन्मदाता हो गया हैं ।[20]

डॉ. अम्बेड़कर मनु को जाति व्यवस्था का नियामक नहीं मानते । मनु ने जाति व्यवस्था का संहिताकरण (codification) कर दिया था, ऐसी उनकी मान्यता है । वह इसे सर्वथा असंभव कृत्य मानते हैं कि किसी व्यक्ति विशेष द्वारा जाति प्रथा जैसी असाधारण धूर्ततापूर्ण व्यवस्था का नियमन किया गया है ।[21]

मुस्लीम आक्रमण के पूर्व की स्थिति :

मुस्लीम आक्रमण के पूर्व शूद्र व अछूत जातियों की स्थिति गुप्तकाल की तुलना में हीनतर ही हुई थी । विस्तृत साम्राज्यों के विश्रृंखलन के साथ-साथ समाज व्यवस्था में भी विश्रृंखलन होता चला गया था । परिणामस्वरूप वर्ण व्यवस्था का स्थान जाति व्यवस्था ने ले लिया था ।

मुस्लीम आक्रमण के पूर्व जाति व्यवस्था रूढ़ हो चुकी थी । "जो जिस जाति में जन्म ले उसी जाति का आशय की मान्यता परिपुष्ट हो चली थी । इसके साथ ही जातीय घेराबंदी सघन होती चली गई थी । मुस्लीम शासन के दौरान धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया शासक वर्ग ने चलायी । छूआछूत तथा अपनी सामाजिक स्थिति से तंग आकर अछूत तथा निम्नवर्गीय शूद्रों में से कईयों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया । ऐसे भी उदाहरण थे कि पराजित हिन्दू शासकों को विजेता मुस्लमान शासकों ने इस्लाम कबूल करने के लिए विवश किया । काफि विवश करने और पीड़ित करने के बाद भी जिन पराजित शासकों, सामंतों व सैनिकों ने धर्म परिवर्तन नहीं किया तो उनसे मैला उठाने जैसे अछूतों के कार्य लिए गए और वे हंमेशां के लिए अछूत बनकर रह गए ।

ब्रिटिश शासनकाल में दलितों की स्थिति :

गांधीजी के असहयोग आंदोलन तथा भारतीय राष्ट्रीय कोंग्रेस की गतिविधियों को असफल बनाने के लिए अंग्रेज सरकार ने अछूतों को कुछ संरक्षण देने की नीति को अपनाया, जिससे सामाजिक अलगाव की प्रवृति को बल मिला । इस बात को लेकर दलित नेता डॉ. भीमराव अम्बेड़कर व महात्मा गांधी में मतभेद हुए ।

डॉ. अम्बेड़कर उस समय अछूतों व दलितों के अधिकारों के लिए कड़ा रूप न अपनाते तो बहुत असंभव था भारतीय संविधान में अछूतों व दलितों के लिए जो विशेष प्रावधान रखे गए हैं वे संविधान में नहीं रहते और दलितों एवं अछूतों के हिस्से में आती केवल मौखिक सहानुभूति और घडियाली आँसू ही होते ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात की स्थिति :

15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता प्राप्त होने के पश्चात 26 जनवरी 1950 को इस देश को अपना संविधान मिला । सौभाग्य से इस संविधान आलेख (ड्राफ्टिग) समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अम्बेड़कर स्वयं दलित वर्ग के थे । इस संविधान ने दलितों को न केवल समता के अधिकार दिए वरन् प्रगति के प्रावधान वं संरक्षण भी दिए ।

'दलित' - अर्थात् हरिजन ज्ञाति नहीं बल्कि पिछड़ा वर्ग है । भारत सरकार की सर्वोच्च न्यायलय ने 1969 में त्रिलोकीनाथ वि. जम्मु-कश्मीर राज्य के फैंसले में कहा था -"**Trilokinath VS. State of Jammu and Kasmir (1969) ISCR 103 A 1960 SCI**"

"The supreme court said 'Article 16 in the First instance by clause (2) probitis discrimination other ground interalia of reigion race caste place of birth residence and permits an exception to bemade in the matter of reseveration in favour of backward classes of citizens. The expiession 'Backward Class' is not used as symonymous of an entire caste of community may in social economic and educational of an entire caste of community may in social economic and educational scale of values at a give time be backward and may on that account be treated as a backward class but that is not because they are members of a cast or community but because they from a class in its ordinary commotation the

expression class means a home gencous section of the people ground to gether because of certain likenesses or common traits and who are indenfiable by some common attributes such as status rank occupation residence in a locally race religion and the like"[22] इस फैसले से स्पष्ट होता है कि 'दलित' - हरिजन जाति नहीं है परंतु एक पिछड़ा हुआ वर्ग समाज है ।

प्रो. यशवंत वाघेला 'बहुजन साहित्य पत्रिका' में यह उल्लेख करते है कि 1932 ई. सन् मेकडोनाल्ड ब्रिटिश सरकार ने Depressed Classes प्रसिद्ध किया था जिसमें Depressed Classes शब्द पद 'दलित' अर्थ सूचक था । जिसे दलित का पर्याय माना गया है ।

उपर्युक्त विविध स्रोतों के आधार पर भी 'दलित' शब्द प्रयोग के निश्चित काल का हक अनुमान नहीं लगा पाते, किंतु दलित शब्द से अनुभूत अर्थ छाया प्राप्त होती है जो दलित या उसके पर्याय शब्दों में साम्यता बनाये रखती है । यह विवाद अनुचित ही है कि दलित शब्द का प्रयोग किसने किया ? कब किया ? क्यों किया ? अत: यहाँ यह विवाद न उठाकर 'दलित' शब्द की उपर्युक्त विविध अर्थछाया स्पष्ट ही है दलित शब्द का अर्थ कोशगत और भावात्मक दृष्टि से ऐतिहासिक सामाजिक संदर्भ में हैं ।

(ड) 'दलित' शब्द ऐतिहासिक संदर्भ में :

भारतीय समाज में युगों से एक समाज ऐसा बन रहा है जो शोषित पीड़ित है । यह समाज करूणामय, अविकसित, अशिक्षित और अंधकारमय जीवन जी रहा है । राजकीय, धार्मिक, सामाजिक और अन्य क्षेत्रों में उसकी उपेक्षा अवहेलना होती रही है । मानव होते हुए भी उन्हें पशु से बदतर माना गया । इस समाज को 'दलित' शब्द दिया गया किंतु इस नामाभिधान से पूर्व इस असंगठित समाज को कई नामों से पुकारा गया ये नाम भी परिस्थितिदर्शक, जातिदर्शक या उपेक्षित भाव दर्शक है । अत: यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय उचित है ।

इस फैसले से स्पष्ट होता है की 'दलित' हरिजन जाति नहीं है परंतु एक पिछड़ा हुआ वर्ग समाज है ।

शूद्रों में जन्मे विद्वान :

— **नारद** ने शूद्र माता के पेट से जन्म लिया ।

— **व्यासजी** ने कैवर्त स्त्री से विवाह किया था, शुकी से **शुकदेव**, आलूकी से **कणाद**, मृगी से **श्रृडगी** और गणिका से **वशिष्ठ** पैदा हुए ।

— महर्षि भारद्धाज धृताची नामक अप्सरा पर आसक्त हुए । उसे लेकर द्रोणाचल पर्वत पर रहने लगे उसके गर्भ से **द्रोणाचार्य** उत्पन्न हुए ।

— मत्स्य कन्या सत्यवती से **व्यासमुनि-पाराशर** सत्यवती से आसक्त हुए। दोनों के संयोग से व्यासजी की उत्पत्ति हुई । जो तप और ज्ञान के भंडार थे उन्होंने अठारह-अठारह पुराणों की रचना और महाभारत की भी रचना की ।

— **कर्ण** दासी पुत्र के रूप में उनका लालन-पालन हुआ ।

— पान्डुपुत्र भीम क्षत्रिय था लेकिन हिडिम्बा असुर जाती की थी और उनकी पत्नी थी । **घटोत्कच** उन्हीं का पुत्र था और **बर्बरीक** भी ।

— रामायण रचयिता **महर्षि वाल्मीकि** एक 'शूद्र' परिवार में जन्मे थे ।

— **'निषाद'** राज गृह जो 'शूद्र' था, एक राज्य का राजा था । **केवट** निषादों का राजा था ।

— **नामदेव** जन्म से दर्जी पर, कर्म से पूजे जानेवाले थे ।

— **तुकाराम** जन्म से शूद्र, मन से ब्राह्मण थे ।

— कर्मयोगी **रैदास** चमार थे ।

— **महिदास** 'ब्राह्मण ग्रंथों' का एक ग्रंथ ऐतरेय ब्राह्मण के लेखक है ।

जब-जब हिन्दुस्तान संकटों में फँसा है तब शूद्रोंने ही देश को बचाया है । ऐसे शूद्र सारस्वत महाविद्वान को शतः शतः प्रणाम ।

आधुनिककाल में 'दलित' शब्द का प्रयोग :

— "आधुनिक काल में 'दलित' शब्द का प्रयोग ई. सन् 1931 में किया गया था, लाहौर (पंजाब) में 'दयानंद दलित उद्धार मंडल' नाम के एक संगठन ने एक संदेश में 'दलित बंधु' शब्द प्रयोग किया था ।"[23]

— 'दलित' शब्द का प्रथम प्रयोग 1886 में 'चर्च ऑफ साउथ इंडिया' ने किया था ।

— भारत में 'दलित' शब्द 1925 में (ई. सन्) के बाद डॉ. बाबासाहब ने प्रचलित किया 'हरिजन' शब्द के विरोध में यह शब्द प्रचलित हुआ था ।

— अवन्तिका प्रसाद मरमट का यह भी मत है, — "ब्रिटिश सरकार के शासन के दौरान मेटियू चेम्सफोर्ड रि फामर्स द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर दलितवर्गो के लिए उनके सरकारी निकार्यो में प्रतिनिधित्व प्रदान

किया गया था तथा उसीके अनुरूप 1919 में सरकारी भाषा में 'दलित वर्ग' सर्वग्राही शब्द बन गया था, जिसमें अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जन जातियाँ तथा अन्य पिछड़े वर्ग के रूप में शामिल थे ।"[24]

— हरीश मंगलम् का मत है कि ई-सन् 1956 में बाबासाहब का निधन हुआ था उसी समय अंजलि काव्य का सर्जन हुआ था किंतु तब तक 'दलित' संज्ञा का प्रयोग नहीं हुआ था ।[25]

— 'दलित साहित्य' शब्द प्रयोग ई. सन् 1954 से हुआ है इसके पूर्व इस शब्द का प्रयोग नहीं हुआ । किंतु 13वीं शताब्दी से अस्पृश्यता विरोधी स्वर प्राप्त होते हैं । यह मत मराठी दलित साहित्यकार 'दया पवार' प्रकट करते है ।

(च) 'दलित शब्द' की उत्पत्ति और वर्णव्यवस्था :

असुर :

आर्यो के भारत में आने के लगभग 400 से 500 वर्ष पूर्व असीरियन लोग भी सिंधु की घाटी में बसे थे । इन लोगों को ऋग्वेद में 'असुर' कहा गया है अर्थात् असीरिया से 'असुर' शब्द आया है । इरान की 'अहुर' जाति और भारत की 'असुर' जाति एक ही जन-जाति की शाखा होने का मत कई विद्वान प्रदर्शित करते हैं । इरान में अहुर सन्मानजनक है, भारत में यह उपेक्षित है ।[26] भारतीय धर्मग्रंथ रामायण और महाभारत, पुराणों आदि में इस प्रजा का उल्लेख है । आर्यो के क्रियाकांडों में होम-हवन यज्ञ में बाधा डालनेवाले प्रचंडकाय, शक्तिशाली, युद्धरत और उनके स्वतंत्र राज्यों का उल्लेख मिलता है । पौराणिक कथाओं में महिषासुर, बाणासुर, बक्टासुर आदि की कथाएँ प्रसिद्ध हैं । अत: उनके नाम भी पशुओं से आयुधों से या उपेक्षित वस्तुओं से जुड़े है ।

दास-दस्यु :

ऋग्वेद में दास-दस्यु दासों का उल्लेख मिलता है । आर्य प्रजा के आगमन के बारे में भी विभिन्न मत है कुछ विद्वान आर्यो का आगमन ई.सन्. 2000 पूर्व में मानते हैं तो कुछ ई. सन् पूर्व 3500 वर्ष मानते है । इस जाति की ही जन जाति 'दास जाति' थी । एक यह भी मान्यता है कि ब्रह्मदेव के पुत्र का नाम 'दक्ष' था, अत: इस दक्ष से उत्पन्न जाति 'दास' या 'दस्यु' कहलाती थी । श्री अवंतिका प्रसाद मानते है कि — आर्यो के आगमन के समय भारत में दास जाति के लोग राज्य करते थे । इस प्रजा का श्याम वर्णी पूजा के रूप में प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख हैं ।

वर्ण-व्यवस्था एवं जाति प्रथा :

"शतपथ ब्राह्मण के अनुसार 'भू' अनुसार 'भू' उच्चारण से ब्राह्मण 'भुव' से क्षत्रिय और 'स्व' उच्चारण से वैश्य की उत्पत्ति हुई ।"[27] यहाँ शूद्र की उत्पत्ति का उल्लेख नहीं है । अस्पृश्यता का उद्‌भव प्रारंभिक ऋग्वेद काल तक नहीं है । समाजशास्त्री यु.एन.धोषाल का मत है कि – "ऋग्वेद से कौटिल्य तक दासों को अछूत नहीं माना गया था ।"[28] तैतरिय ब्राह्मण श्लोक में ऋग्वेद से वैश्य, यजुर्वेद से क्षत्रिय और सामवेद से ब्राह्मण पैदा हुए । यहाँ भी शूद्रों का उल्लेख नहीं हैं, 'प्रथम शूद्र का उल्लेख ऋग्वेद के 'पुरुष सूक्त' में हैं ।'[29] जो वर्ण विभाजन का उल्लेख करता है । इसमें यह बताया गया है कि यह पवित्र तथा दैवी उद्‌गम है । इसमें निहित असमानता, भेदभाव और शोषण की व्याख्या की है। इसमें फिर गीता की दैविक शक्ति और जुड़ गई जिसमें स्वयं भगवान यह दावा करते है कि उन्होंने योग्यता और कर्म के आधार पर चार वर्ण बनाये । वास्तव में कुछ समीक्षकों ने शास्त्रों के 'कर्म' की 'जन्म' के अनुसार 'भाग्य' के रूप में व्याख्या कर दी । जो वर्ण विभाजन से शुरु हुआ था वह शोषणवाले समाज के विकास के समय में जातियों के व्यवस्था में बदल गया । यहाँ तक कि इसमें एक पाँचवाँ समूह, अति शूद्र अछूतों के रूप में सामने आया ।

वर्णव्यवस्था शब्दार्थ और स्वरुप :

'वर्ण' का अर्थ ऋग्वेद में रंग माना है । संस्कृत, हिन्दीकोश, हिन्दी-गुजराती जोड़णी कोश और गुजराती-अंग्रेजी कोश आदि में 'वर्ण' का अर्थ रंग बताया गया है । डॉ. गोविंद सदाशिव धूर्ये का मत है कि – 'वर्ण' शब्द प्रयोग केवल आर्यवर्ण और दास वर्ण के अंतर के लिए प्रयुक्त हुआ है । ष्क्ष्चारों वर्णो में भी उल्लेखित सभी वर्णो का संबंध रंग से माना गया है जैसे ब्राह्मण सफेद, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीला और शूद्र का कृष्ण वर्ण ।[30]

वर्णभेद और रंगभेद :

वर्ण शब्द में रंग अर्थ छाया है, अतः यहाँ यह भी सवाल है कि दक्षिण अफ्रिका का रंगभेद (श्वेत-श्याम) और भारतीय वर्ण व्यवस्था में क्या साम्य है ? उस प्रदेश में श्वेत वर्ण प्रजा 13 प्रतिशत और श्याम वर्ण प्रजा 87 प्रतिशत है जो भारतीय समाज में भी दलित और सवर्ण प्रजा की आबादी करीब समान है । रंगभेद नीति केवल रंगभेद करती है जबकि भारतीय वर्ण व्यवस्था जातिगत एवं वारसागत है, जन्मगत है । 'नीग्रो' की समस्याएँ और दलितों की समस्याओं में समानताएँ प्राप्त होती है । क्योंकि दोनों व्यवस्थाओं

में मानव का मानव के प्रति अमानवीय व्यवहार दिखाई देता है । यहाँ हमें यह भी सोचना होगा कि वर्ण व्यवस्था जन्मगत थी या कर्मगत ?

वर्ण व्यवस्था जन्मगत या कर्मगत :

हिन्दूओं के अनुसार प्राचीन काल में वर्ण व्यवस्था के कर्मगत होने के कई संकेत प्राप्त होते हैं । **उशिज** नामक शूद्र जाति की स्त्री के बेटे **कक्षिवा** ने ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 16 से 26 सूत्रों की रचना की थी । छान्दोग्य उपनिषद के अनुसार जनश्रुति को वेद पढ़ानेवाले **'रैक्व'** शूद्र थे । शादी विवाह के भी कई उदाहरण हैं, "**व्यासजी** माछीमार जाति की कन्या से उत्पन्न हुए थे । **याज्ञवल्कय, विश्वामित्र, वशिष्ठ, गौतम, मातुंग, भारद्वाज** आदि ने बल से ऋषित्व प्राप्त किया था ।"[31]

वर्ण परिवर्तन, खान-पान :

कुछ उदाहरण ऐसे भी प्राप्त होते हैं कि कर्म से वर्ण परिवर्तन होता था । राजा के पैर भी क्षत्रिय से शूद्र बने थे । 'राजा मालानंद' क्षत्रिय से वैश्य बने हुए थे । उस समय एक ही परिवार में जन्में सदस्यों के वर्ण अलग-अलग होने का भी संकेत प्राप्त होता है, 'राजा रीतिसेन' का एक पुत्र 'देवर्षि' ब्राह्मण था तो दूसरा पुत्र शान्तनु क्षत्रिय था ।

खान-पान :

रोटी व्यवहार में भी कोई भेद-भाव नहीं होने के कई उदाहरण प्राप्त होते हैं । राम और शबरी के जूठे बैर खाने की घटना प्रसिद्ध और स्मरणीय है। क्षुधा से पीड़ित होकर विश्वामित्र ने कुत्ते का मांस खाया था । डॉ. जगदीशसिंह राठौर का मत है कि – "प्राग्बोद्ध काल में हिन्दूओं में खान-पान और शादी-ब्याह के संदर्भ में जड़ नियम नहीं थे । जिससे आंतरजातीय भोजन और विवाह पर निषेध होता नहीं था । युधिष्ठिर के महायज्ञ में भी सूपा ऋषि के आगमन और भोजन के बाद ही यज्ञ को पूर्ण हुआ माना गया था ।" समाजशास्त्री धूर्ये का मत है कि – "उच्चवर्ण के लोंग का शूद्र स्त्री के साथ ब्याह होना बुरा नहीं माना जाता था ।"

'विश्व दलित' और 'दलित भारत' :

विश्व में अन्य अमीर - गरीब, मज़दूर - मालिक, काले-गोरे के भेद है। भारत में उपर्युक्त भेद तो है ही किंतु वर्ण व्यवस्था के कारण जन्मजात भेद, लिंग भेद और धर्म भेद भी दिखाई देता है । कुसुम मेघवाल के शब्दों में – "दलित वर्ग का प्रयोग हिन्दू समाज व्यवस्था के अंतर्गत परंपरागत रूप से शूद्र

माने जानेवाले वर्गों के लिए रूढ़ हो गया है । दलित वर्ग में वे जातियाँ आती है जो निम्न स्तर पर है और जिन्हें सदियों से सताया गया है ।"[32]

गाँव और शहर के जीवन का संदर्भ :

नीची जाति के लोगों को शहर या गाँव में अलग ज़मीन पर बसाया जाता था । उन्हें मंदिरों में प्रवेश नहीं दिया जाता था । सवर्णो के कुओं और तालाबों से पानी भी नहीं मिलता था । अछूतों पर दृष्टिपात होने मात्र से लोग अपवित्र हो जाते थे और यदि कोई अछूत किसी ब्राह्मण के सामने आ जाय तो उसे कठोर सज़ा भी मिलती थी । इस प्रकार वर्ण व्यवस्था में शूद्रों की जो स्थिति थी वही स्थिति जाति व्यवस्था में नीची जातियों की भी थी । भारतीय समाज में वह जाति व्यवस्था बहुत दिनों तक बनी रही । जिस पूंजीवादी व्यवस्था पर यह आश्रित था गाँव का स्वशासन, विनिमय संबंधों का अपूर्ण विकास और यातायात के अक्षम और स्वल्प साधन इसके आधार थे ।[33]

आगे चलकर अंग्रेजी शासनकाल में जिन आर्थिक शक्तियों का जन्म हुआ उन्होंने जाति व्यवस्था का आर्थिक आधार ही धाराशयी कर दिया । वर्गसंघर्ष, राजनीतिक आंदोलन, आधुनिक शिक्षा नया न्यायतंत्र आदि का भी योगदान रहा है । शहरीकरण के कारण जाति प्रथा का कुछ अंशों में ह्रास हुआ है । लेकिन शूद्रों, अस्पृश्यों एवं वर्णव्यवस्था के शूद्रों जैसी है, आज का दलित गाँव में रहकर कपड़ा-पानी-घर एवं रोटी के लिए मोहताज रहता ही है आज शहरों में सामाजिक दृष्टि से समानता प्राप्त हुई महसूस होती है लेकिन देहाती समाज में दलित दयनीय एवं विपन्न दशा में है जो शूद्रों एवं अस्पृश्यों की थी ।

शहरों में यदि हम गहराई से देखें तो पता चलेगा कि ऊँचे महलों में रहनेवालें अमीरों की चक्कीने झोंपडी में रहनेवाले गरीब मज़दूर वर्ग को पीसा जा रहा है । उसकी सामाजिक स्थिति शहरों में रहते हुए भी अत्यंत दयनीय है। शहरों में अस्पृश्यता कम हो गई है लेकिन अस्पृश्यता नष्ट होने मात्र से दलितों का दुःख दूर नहीं हो सकता है । अत: हम कह सकते हैं कि भारतीय समाज रचना में जब तक जाति व्यवस्था बनी रहेगी तब तक अस्पृश्य, अस्पृश्य ही रहेगा और दलित, दलित ही रहेगा ।

(छ) दलित वर्ग के उत्थान संबंधी आंदोलन :

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति की न केवल भूमिका महत्त्वपूर्ण है बल्कि निर्णायक भी है । भारतीय समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा और हैसियत उसकी जाति पर निर्भर करती है ।

हिन्दू समाज मूल रूप से ब्राह्मण वर्ग द्वारा नियंत्रित समाज है । कई धार्मिक नेताओं और समाज सुधारकों ने जाति की कठोरता और जटिलताओं को बदलने और सुधारने की चेष्टा की पर उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली । आज भी वैसा ही सामाजिक भेदभाव और आर्थिक विषमता है जो शताब्दियों पूर्व थी । आज सबसे अधिक कष्ट तो शूद्रों को हो रहा है । ये लोग पशुओं सा जीवन व्यतीत करने पर विवश है । संसार के इतिहास में कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलेगा जहाँ मानवों को इतना अधिक गिरा दिया गया हो और उनसे क्रूरतापूर्ण और अमानवीय व्यवहार किया जाता हो । हिन्दू समाज में एक ही धर्म के माननेवाले में अपने साथियों के प्रति भेदभाव और अन्याय से काम लिया जाता है । भारतीय समाज में इससे अधिक लज्जाजनक और कोई बात नहीं ।[34]

अनुसूचित जातियों और जनजातियों के कुछ शिक्षित व्यक्तियों द्वारा अंग्रेजों के साथ काम करते समय तनिक ज्ञान प्राप्त करके कुछ क्षेत्रों में अपने बच्चों की शिक्षा और जनजातियों में ईसाई मिशनरियों द्वारा शिक्षा के प्रसार के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप इन जातियों की मुक्ति का आंदोलन प्रारंभ हुआ । इन जातियों की दुर्दशा की ओर राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान भी गया ।[35]

समाजसुधार के लिए समय-समय पर महापुरूषों द्वारा प्रयत्न किए गए हैं । छूआछूत व ऊँच-नीच को मिटाने के लिए महान विभूतियों ने सधबद्ध होकर कार्य प्रारंभ किए है ।

धार्मिक प्रयास :

भारतीय समाज धार्मिक एवं शास्त्रीय आस्थाओं से नियंत्रित रहा है दलितों को अपने मानवीय अधिकार दिलाने तथा समता का उद्‌घोष करने का कार्य भी सर्वप्रथम धर्म के माध्यम से ही हुआ ।

बौद्ध व जैन मत :

भगवान बुद्ध पहले महान सामाजिक क्रांतिकारी थे जिन्होंने ब्राह्मणों के वर्चस्व को कुछ समय तक चुनौती देने में सफलता प्राप्त की । उन्होंने सीधे-सादे धर्म की शिक्षा दी जिसमें आचरण की शुद्धता पर बल दिया गया । इस क्रांतिकारी विचारधारा को बनाए रखने के लिए एक मजबूत संगठन की आवश्यकता थी, जो नहीं था । इसलिए ब्राह्मण फिर अपना वर्चस्व स्थापित करने में सफल हो गए । कुछ सीमा तक इसका कारण यह था कि ब्राह्मणों ने बुद्ध के सिद्धांतों को हिन्दू धर्म में मिला लिया और आचरण की शुद्धता पर

जोर देने लगे । उन्होंने भगवान बुद्ध को अपनी देवमाला में ऊँचा स्थान प्रदान किया ।[36]

महात्मा बुद्ध ही पहली विभूति थे जिन्होंने अपने मत द्वारा छूआछूत और ऊँच-नीच के विरूद्ध जेहाद छेड़ा । उनके धर्म में वैश्या आम्रपाली, दस्यु अंगुलीमल की तरह किसी भी दीन-दलित और मानव मात्र के लिए स्थान था। वे मानव मात्र में कोई भेद नहीं मानते थे । वैदिक कर्मकांड और ब्राह्मणों द्वारा अपने आपकों सर्वोच्च्व बनाए रखने की दुरभिसंधि के विरूद्ध बौद्ध धर्म का प्रथम विद्रोह था ।

महावीर स्वामी, बुद्ध के समकालीन जैन मत के चौबीसवें तीर्थकर थे। उनके मत में भी मानव मात्र को समता की दृष्टि से देखने का दिव्यत्व है । उनका मत एक मंद बयार की तरह चला जबकि बौद्ध मत एक आँधी की तरह भारत में उठा और अल्पकाल में ही आँधी के लौटने की तरह लुप्त हो गया । जैनमत की मंद बयार आज भी बह रही है । वस्तुतः ये मत छूआछूत और ऊँच-नीच के विरोध में उठनेवाली पहली आवाजें हैं ।

भक्ति आंदोलन :

संत कबीर, तुकाराम, रैदास, चैतन्य महाप्रभु आदि ने ऊँच-नीच और छूआछूत का विरोध किया । इन संतों ने अपनी वाणी द्वारा मानव समता का उद्घोष किया । छूआछूत और ऊँच-नीच के विरोध में यह वाणी दलित वर्ग का संबल बनी । संत कबीर के प्रयास इस दिशा में विशेष ही प्रखर रहे । उन्होंने कबीर पंथ चलाया जिसमें समता के साथ-साथ संस्कार निर्माण पर भी ध्यान दिया जाता था ।

कबीर की वाणी में तलवार की धार जैसा पैनापन था, जिसके प्रहार से परंपरावादी हिन्दू समाज का तिलमिला जाना स्वाभाविक था -

"तू ब्राह्मण मैं काशी का जुलाहा, बूझ्कहू मौर गियान ।" जैसे स्वर में बात करना उस समय कबीर का ही साहस था ।

संत रामानंद, रैदास, कबीर, तुकाराम, पीपा आदि भी मानव मात्र की समता के पक्षधर थे । इनके शिष्यों की संख्या हज़ारों में थी ।

देशव्यापी भक्ति आंदोलन की प्रमुख विशेषता रही है ऊँच-नीच के भेदभाव का विरोध और मनुष्य-मनुष्य की समानता की घोषणा । संस्कृत का माध्यम छोड़कर जब लोक भाषा में साहित्य रचा जाने लगा तब संस्कृति पर द्विजों, विशेषकर ब्राह्मणों का एकाधिकार भी समाप्त हो गया । संस्कृत में शूद्र

कवियों की संख्या नगण्य है तो हिन्दी, मराठी, तमिल, बंगाली आदि भाषाओं में ऐसे अनेक कवि अग्रगण्य हैं । वे संत कहलाए और उच्च वर्णों द्वारा पूजे गए । रैदास के कुटुंब के लोग मुर्दा जानवर ढोते थे किन्तु अपनी साधना के बल पर वह आचरणवान विप्रों द्वारा पूजे गए –

"जाके कुटुम्ब सब ढोर ढोवत फिरहिं अजहूँ बनारसी आसपासा ।

आचार सहित विप्र करहिं दण्डउति तिने-तिने रविदास दासानुदासा ।।"[37]

संत रैदास ने अपने आचरण और वाणी दोनों से ऊँच-नीच व जाति भेद की निस्सारता को प्रतिपादित किया -

"जात-पांत पूछे नहीं कोई

हरि को भजे सो हरि का होई ।"

"मीरा ने गोविंद मिलिया गुरु मिलियाँ रैदास" अर्थात् रैदास को गुरु बनाने के परिणामस्वरूप उन्हें गोविंद अर्थात् श्रीकृष्ण की प्राप्ति हुई ।

ब्रह्मसमाज :

ब्रह्मसमाज उन्नीसवीं सदी के सुधारों की पहली कड़ी थी । इसकी स्थापना 1828 में राजा राममोहनराय ने की । वह प्रथम भारतवासी थे जिन्होंने भारत में सुधारवादी आंदोलन का सूत्रपात किया । ब्रह्मसमाज ने अनेक सामाजिक कुरीतियों को उखाड़ फेंकने का बीड़ा उठाया था । इसने प्रचलित छूआछूत का प्रबल विरोध किया तथा समता के सिद्धांत का प्रतिपादन करके लाखों व्यक्तियों को ईसाई धर्म अपनाने से रोका, अंतर्जातीय विवाह का समर्थन किया एवं हिन्दू समाज की सामाजिक कुरीतियों पर कठोर प्रहार करते हुए उसमें नवचेतना का शंख फूंका ।

प्रार्थनासमाज :

ब्रह्मसमाज के प्रभाव से सन् 1867 में महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई । इनके प्रमुख सदस्यों में श्री महादेव गोविंद रानाडे, सर आर.जी. भण्डारकर तथा नारायण चंद्रावरकर थे । इस आंदोलन को आध्यात्मिक नेतृत्व महादेव गोविंद रानाडे ने प्रदान किया और उन्हीं के कारण इसने सफलता भी प्राप्त की । श्री रानाडे ने अपना संपूर्ण जीवन प्रार्थनासमाज के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने में लगाया ।

प्रार्थनासमाज द्वारा दलित वर्ग के उत्थान एवं छूआछूत के निवारण हेतु अनेक प्रयास किए गए । जाति प्रथा का अंत करने के लिये प्रार्थनासमाज के समर्थकों ने अथक प्रयास किया । प्रार्थनासमाज के समर्थकों द्वारा "दलित वर्ग

मिशन" नामक संस्था की स्थापना भी की गई जिसका उद्देश्य विशुद्ध रूप से दलित वर्ग के उत्थान हेतु कार्य करना था ।

T. HANSA MEHTA LIBRARY The M. S. University of Baroda

आर्यसमाज :

हिन्दू जाति की सामाजिक दशा सुधारने के लिए 19वीं शताब्दी में जिन आंदोलनों का सूत्रपात हुआ, उनमें आर्य समाज का महत्व सर्वोपरि है । इसकी स्थापना महर्षि दयानंद (1824-1883) ने सन् 1875 में की ।

काठियावाड़ गुजरात के एक सम्पन्न परिवार में जन्मे दयानंद का वास्तविक नाम मूलशंकर था । बचपन से ही अत्यंत गंभीर प्रकृति के इस युवक ने 1846 में अपना घर त्याग दिया और अपना सारा जीवन देश और धर्म की सेवा में लगाने का निश्चय किया । 15 वर्षों तक वे ज्ञान की खोज़ में संपूर्ण भारत में घूमते रहे । अंत में मथुरा में उन्हें स्वामी विरजानंद सरस्वती से शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला । अपने इसी गुरु से इन्होंने निर्भयता का पाठ पढ़ा ।

स्वामी दयानंद ने ऊँच-नीच और छूआछूत को सैद्धांतिक और शास्त्रीय आधार पर अमानवीय घोषित किया । उन्होंने वेदों को आधार मानकर इस तथ्य को प्रमाणित किया कि जाति का आधार जन्म नहीं, कर्म है तथा शूद्र के लिए वेदों का पठन-पाठन निषिद्ध नहीं है ।

स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा आर्यसमाज की स्थापना के साथ ही हिन्दू समाज में सदियों से पनपी विसंगतियों को दूर करने का एक प्रबल आंदोलन आरंभ हुआ । स्त्रियों और शूद्रों को उनके मानवीय अधिकार पुन: दिलाना इस संस्था के प्रमुख उद्देश्यों में सम्मिलित थे । आर्यसमाज ने इस दिशा में जो कार्य किए थे अभूतपूर्व थे । आज भी यह संस्था इस दिशा में कार्य कर रही है ।

पं. गंगाराम ने आर्य समाज के माध्यम से दलितोद्धार के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया । ओड़ जाति के लोगों के आचार विचार हिन्दू-मुस्लिमों से मिलते थे । पंडितजी ने उन्हें विधिपूर्वक शुद्ध करके गायत्री का उपदेश दिया और यज्ञोपवीत धारण करना सिखाया । गाँव में तो यह कार्य छोटे पैमाने पर हो गया पर बड़े पैमाने के शुद्धिकरण के आयोजन में अनेक बाधाएँ आई । सन् 1888 में बदायूं जिले के गंवर नामक गाँव में भी इसी प्रकार की शुद्धि का समाचार मिलता है ।[38]

आर्य समाज द्वारा दलितोद्धार का उल्लेखनीय उदाहरण जालंधर आर्य

समाज में रहतियों की शुद्धि प्रस्ताव से संबंधित है । इससे पूर्व सन् 1893 में सीमित पैमाने पर गुरदासपुर में रहतियों की शुद्धि की जा चुकी थी । सामूहिक शुद्धि का वर्णन हम चमूपति द्वारा लिखित आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के इतिहास से उद्धृत करते हैं –

"लाला मुन्शीराम ने आर्य समाज की 3 मार्च, 1899 की अंतरंत सभा में लाला बदरीदास के अनुमोदन से रहतियों की शुद्धि का प्रस्ताव उपस्थित किया । रहतिया मंतव्य की दृष्टि से सिख थे और कपड़े बुनने का कार्य करते थे । हिन्दू तो हिन्दू स्वयं सिख भी उनसे अस्पृश्यता का व्यवहार करते थे । समाज की अंतरंग सभा ने यह विषय प्रतिनिधि सभा में भेज दिया। उसके पश्चात 22 अगस्त को समाज की ही अंतरंग सभा में यह प्रस्ताव का स्वीकार कर लिया गया, परंतु 6 अक्तूबर की साधारण सभा ने रहतियों को आर्य सभासद बनाने तथा उनके साथ खुला खान-पान करने में असमर्थता प्रकट की । केवल फर्श पर बैठने, कुओं पर पानी भरने तथा उत्सव में सम्मिलित होने की ही स्वतंत्रता दी । 23 अप्रैल 1900 को लगभग सौ रहतियों की शुद्धि का प्रस्ताव हुआ परंतु बहुपक्ष ने इसे गिरा दिया । यहाँ से निराश होकर लाला मुन्शीराम चालीस के लगभग रहतियों को लाहौर ले गए । वहाँ के आर्यसमाजी सामान्यत: लाहौर से बाहर के होते थे । उन पर कोई बिरादरी का बंधन नहीं था । उन्होंने शुद्धि का प्रबंध करना स्वीकार कर लिया। सिख भाईयों को अवसर दिया गया कि वे चाहें तो रहतियों को अपने साथ मिला लें, परंतु वे इसमें असमर्थ थे । अंत में 3 जून, 1900 को क्षौर करा कर रहतियों का वह समूह आर्य बना लिया गया । लाहौर आर्यसमाज का वह दृश्य देखने योग्य था ।"[39]

इसके बाद पंजाब में लायलपुर, रोपड़, जालंधर, लुधियाना आदि स्थानों पर रहतियों की शुद्धि बराबर होती रही । ओड़ो के समान मेघ जाति भी अस्पृश्यों में गिनी जाती थी । यह जाति स्यालकोट, गुरूदासपुर तथा गुजरात एवं जम्मु-कश्मीर रियासत में बस्ती है । सन् 1921 की जनगणना में इनकी संख्या 3 लाख बताई गई है । मेघ लोग अन्य अस्पृश्य वर्गो सांसियों, चूड़ों, चमारों आदि में पुरोहित का कार्य करते थे लेकिन फिर भी सदियों से धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक सभी प्रकार के अधिकारों से वंचित थे । उनके स्पर्श मात्र से ही अपवित्रता समझी जाती थी । 14 मार्च, 1903 को स्यालकोट आर्यसमाज की अंतरंग सभा में यह निश्चिय हो गया कि 28 मार्च

के वार्षिक उत्सव के समय शुद्धि का कार्य सम्पन्न हो जाना चाहिए । न केवल हिन्दू अपितु मुस्लमान, ईसाई भी इस कार्य में बाधक हो रहे थे । 28 मार्च को हुई शुद्धि में केवल 200 मेध ही सम्मिलित हुए ।

इस शुद्धि का राजपूतों ने घोर विरोध किया । इन्होंने शुद्ध हुए मेघों को मारा, कुएं से पानी भरने से इन्कार कर दिया और झूठे मुकदमों में फँसाकर गाँव छोड़ने पर विवश किया ।

सन् 1912 में आर्य मेघोद्धारा सभा का गठन कर शुद्धि के इस कार्य को व्यवस्थित रूप दे दिया । मानसिक और धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ अनेक पाठशालाएँ खोली गई । आर्य सभा के दस्तकारी स्कूल में बढ़ई, दर्जी एवं अन्य दस्तकारी के कार्य सिखाए जाने लगे । मेघ बालकों को गुरूकुल गुजरावाला, गुरूकुल कांगडी में निःशुल्क अध्ययन के लिए भेजा गया । सन् 1918 में आर्यनगर बसाया । उसमें आर्य समाज भवन, कन्या पाठशाला, चिकित्सालय, सहकारी क्रय-विक्रय केन्द्र आदि संस्थाओं का गठन किया गया और एक आदर्श उद्धारक बस्ती का रूप दे दिया गया । सन् 1921 में इस कार्य की सुविधा के लिए दिल्ली में विधिपूर्वक दलितोद्धार सभा की स्थापना कर दी गई । इस सभा के उद्देश्य इस प्रकार थे –

- भारत की दलित जातियों में सदाचार का प्रसार ।
- उनको धर्मच्युत करनेवाले आक्रमणों से बचाना ।
- धृणा के मिथ्या संस्कारों को दूर करना ।
- दलितों के खोए हुए मानवीय अधिकारों को दिलाना ।
- दलितों में शिक्षा का प्रसार करना ।

इस सभा द्वारा बेगार प्रथा के उन्मूलन, कुओं पर पानी भरने देना, अछूतों के लिए मंदिरों के द्वार खुले रखना, शिक्षा का प्रचार करना आदि अनेक कार्य किए गए । उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा प्रांतों की परिगणित एवं दलित जातियों चमार, कुरमी, डोम, पासी, गोला, मुसहरा, काछी, केवट आदि आर्य समाज के दलितोद्धार कार्यक्रम से विशेष आकृष्ट हुए ।[40]

"आर्य बिरादरी सम्मेलन" बम्बई एवं "जाति-पांति तोड़क मण्डल" पंजाब ने जाति-पांति की दीवारों को ढहाने के लिए युद्ध स्तर पर प्रयास किए । वर्ष 1917 के अंतिम दिनों में आर्य बिरादरी सम्मेलन के तीसरे अधिवेशन में जाति प्रथा के खिलाफ पाँच प्रस्ताव स्वीकृत हुए ।[41]

सन् 1890 ई. में चिरंजीव भारद्वाज ने आर्य शिरोमणी सभा की

स्थापना की जिसने जाति प्रथा का उन्मूलन कर आर्य बिरादरी के गठन की शुरूआत की । आर्य भारती सभा की स्थापना 1907 में हुई । सन् 1922 में भाई परमानंद के निवास पर 'जाति-पाँति तोड़क मण्डल' बनाया गया जिसका काम खान-पान संबंधी प्रतिबंधों, अस्पृश्यता का निषेध करना था । भाई भूमानंद, संतराम आदि इस मंडल के अग्रणी नेता थे ।[42]

दलितोद्धार के आर्य समाज आंदोलन पर टिप्पणी करते हुए 15 फरवरी, 1911 को "ट्रिब्यून" ने लिखा कि इस आंदोलन के कारण बम्बई विधान परिषद को महार एवं अन्य दलित वर्गो को शिक्षा एवं नौकरी के क्षेत्र में वरीयता देने का कानून पारित करना पड़ा । इन्हीं दिनों कलकत्ता विधान परिषद में भी इसी प्रकार के कानून पास करने की मांग उठाई गई । 11, 12, 13 मई 1911 को मद्रास के तेरहवें प्रांत सम्मेलन में दलितोद्धार के संबंध में विशेष प्रस्ताव स्वीकृत हुआ । सन् 1929 में ठाकुर मार्शलसिंह के प्रयत्नों से उत्तरप्रदेश राज्य परिषद ने नायक बालिका संरक्षण कानून पारित किया ।[43]

उत्तरप्रदेश में पिछड़ी जातियों के कल्याण के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा ने अलग से 'जरायमपेशा विभाग' खेला जिसने पुनर्वास, शिक्षा एवं चिकित्सा को बखूबी संचालित किया ।[44] आर्यनगर, लखनऊ जैसी आवास योग्य कॉलोनी का निर्माण इसका उल्लेख योग्य उदाहरण है ।[45]

आर्य समाजी नेताओं पं. रोशनलाल, सत्यानंद एवं राधाकिशन आदि ने अपने प्रभावशाली भाषणों से जनता में समानता एवं भ्रातृत्व का संदेश दिया । इन नेताओं, उपदेशकों के समान मानवीय अधिकारों के प्रचार कार्य ने पुराण पंथी हिन्दूओं को भी अपनी और आकृष्ट किया ।[46]

आर्य समाजों द्वारा दलित वर्गो के लिए लाहौर एवं अन्य स्थानों पर संचालित स्कूलों में सवर्ण हिन्दू अपने बालकों को सहर्ष प्रवेश दिलाने लगे । उत्तरप्रदेश के हजारों डोमों को आर्य धर्म में दीक्षित किया गया, चमारों के लिए विद्यालय खोले गए ।

सन् 1917 में कलकत्ता अधिवेशन में जी.एन. नटेशन ने दलितोद्धार के संबंध में एक प्रस्ताव रखा जिसका अनुमोदन करते हुए बी.जे. देसाई ने कहा "सामाजिक न्याय की स्थापना से ही हम स्वशासन के अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे ।"[47]

राजनीतिक जीवन की सुसम्बद्धता के लिए लाला लाजपतराय सामाजिक जीवन की शुद्धता पर बल देते हैं । इसीके परिणामस्वरूप उन्होंने

अछूतों के साथ किए जाने वाले दुर्व्यवहार की सार्वजनिक रूप से नींदा की । सम्वत् 1970-71 वि. में उन्होंने काशी, मुरादाबाद, बरेली, प्रयाग आदि स्थानों पर अछूतोद्धार के लिए भाषण दिए । सम्वत् 1970 वि. में कांगड़ी (हरिद्वार) गुरुकुल में अछूत सम्मेलन में सभापति पद से भाषण देते हुए अछूतों के प्रति उदारता बरतने का आग्रह किया । उन्होंने अछूत बालकों की शिक्षा के लिए चार हज़ार रूपये भी दिये ।

इसके अतिरिक्त लालजी ने अछूतोद्धार के लिए तिलक स्कूल खोला तथा लोकसेवक मण्डल के सदस्यों को पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों में भेजा । 'वंदेमातरम्' पत्र के माध्यम से उन्होंने ठोस प्रचार कार्य भी किया ।

करांची में दिसम्बर 1912 में आयोजित शुद्धी सभा के अध्यक्ष पद से बोलते हुए उन्होंने कहा - "मेरे विचार में इससे बढ़कर और कोई अत्याचार किसी बुद्धि संपन्न मनुष्य के साथ नहीं हो सकता कि उसे ऐसी परिस्थितियों में रखा जाए जिससे उसके हृदय में ऐसे भाव उत्पन्न हो जावें कि मैं सदा के लिए अविद्या, दासता और दीनता के लिए ही पैदा हुआ हूँ और मुझे अपनी भलाई के लिए किसी प्रकार की आशा करना एक बड़ा पाप है ।"[48] मई 1910 के 'इण्डियन रिव्यू' में उन्होंने लिखा - 'इन जातियों के लिए सबसे अधिक आवश्यकता शिक्षा की है जिससे इनमें नेता और समाज सुधारक उत्पन्न हो । ये नेता और सुधारक सामाजिक संघटन में उन्हें अपनी परिस्थिति और पद का बोध कराएँगे । जाति की भलाई के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि अत्यंज जातियों की शिक्षा का बीड़ा उठाया जाए । उनमें अदम्य उत्साह से शिक्षा का प्रसार किया जाए । अछूत जातियों की शिक्षा हमारी सामाजिक समस्या की पूर्ति करने में सहायक होती है । सन् 1925 में अपने इस कार्य के लिए उन्होंने अखिल भारतीय कमेटी की स्थापना की ।'[49]

महर्षि दयानंद ने 'सत्यार्थ प्रकाश', ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तथा अपने अन्य ग्रंथो के माध्यम से आर्ष साहित्य के पठन-पाठन तथा वैदिक कर्मो को करने के लिए आम आदमी के लिए अवरूद्ध द्वारों को खोल कर प्रत्येक हिन्दू को द्विज का वह अधिकार प्रदान किया जो सदियों से परंपरावादी ब्राह्मणों ने छीन रखा था ।

उनके द्वारा चलाए गए आर्य समाज आंदोलन का विरोध भी कम

नहीं हुआ । पुरातन पंथी सनातन धर्मी हिन्दूओं ने आर्य समाज का खूब विरोध किया किन्तु उनका यह विरोध आर्य समाज के क्रांतिकारी विचारों को रोक नहीं सका ।

आर्य समाज की सुधारवादी बाढ़ रोकने के लिए किशोरीलाल गोस्वामी, प.लज्जाराम जैसे सनातनधर्मी आस्थाओं वाले हिन्दी लेखकों ने अपने उपन्यासों में इन सुधारवादी विचारों का घोर विरोध किया ।

आर्यसमाज जैसी जीवंत संस्था का गठन एवं प्रसार उन्नसवीं सदीं की एक महत्त्वपूर्ण घटना है । आर्य समाज द्वारा सुधार के क्षेत्र में किए गए प्रयासों की परिणति उन्नीसवीं व बीसवीं सदी की एक महत उपलब्धि कही जा सकती है ।

आर्यसमाज ने स्त्री शिक्षा, विधवा, पुनर्विवाह, धार्मिक, अंधविश्वासों व रूढ़ियों का परित्याग, शुद्धिकरण, शिक्षा का प्रसार आदि कार्यक्रमों के साथ दलितोंद्धार और छूआछूत समाप्त करने जैसे कार्यो को हाथ में लिए तथा इसके लिए जनमानस तैयार करके जन-चेतना जगाई ।

उत्तर भारत में स्थान-स्थान पर आर्य समाज की शाखाएँ, समाज भवन, विद्यालय, पाठशालाएँ तथा कॉलेज, गुरुकुल खुले तथा इनके माध्यम से एक शताब्दि तथा व्यापक स्तर पर कार्य किया गया ।

यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आर्य समाज ने ऊँच-नीच और छूआछूत को समाप्त करने में जो भूमिका निभायी, यह बेजोड़ है । स्वतंत्रता आंदोलन में भी आर्य समाज के नेताओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । स्वामी श्रद्धानंद, लाला लाजपतराय, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि स्वतंत्रता सेनानी आर्य समाज की ही देन है ।

रामकृष्ण मिशन :

प्राचीन व अर्वाचीन विचारों का समन्वय करते हुए हिन्दू धर्म की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनःस्थापित करने का पर्याप्त श्रेय रामकृष्ण मिशन को है । स्वामी रामकृष्ण परमहंस के आदर्शो एवं सिद्धांतो को कार्य रूप में परिणित करने के उद्देश्य से रामकृष्ण मिशन की स्थापना स्वामी विवेकानंद द्वारा की गयी ।

रामकृष्ण मिशन समता के सार्वजनीक सिद्धांतों के आधार पर समाज सेवा के क्रियात्मक पक्ष को अनुप्राणित करते हुए छूआछूत व ऊँच-नीच का विरोध करने में संलग्न है ।

थियोसोफिकल सोसायटी :

थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना 1875 में अमेरिका (न्यर्योर्क) में हुई थी । इसके संस्थापक मदाम वलावत्सकी (रूसी) और कर्नल आलकाट (अमेरिकन) थे । ये दोनों दयानंद सरस्वती के निमंत्रण पर 1879 में भारत आए । बाद में श्रीमती एनी बिसेन्ट इस सोसायटी की प्रमुख कार्यकारी बनी । एनी बिसेन्ट जन्म से आयरिश थी किंतु उन्होंने भारत को अपनी मातृभूमि स्वीकार कर लिया था ।

थियोसोफिकल विचारक एनी बिसेन्ट का व्यक्तित्व अद्भूत था । समाज सुधार के अनेक कार्यो के साथ ही छूआछूत का विरोध भी कर उन्होंने प्रशंसनीय कार्य किया ।

महात्मा गांधी :

अछूतों के लिए हरिजन शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम महात्मा गाँधी ने किया । उन्होंने जीवन भर हरिजनों की दशा सुधारने का भरसक प्रयत्न किया और उन्हें पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई । गाँधीजी हरिजनोत्थान को देश सेवा का एक अनिवार्य अंग मानते थे । सन् 1930 के बाद तो गाँधीजी ने हरिजनोद्धार को ही अपना मुख्य लक्ष्य बनाया । इसके लिए 1933 में उन्होंने हरिजन सेवक संघ की स्थापना की । उन्होंने देश भर में हरिजन सेवक संघ की शाखाएं स्थापित की तथा देशभर का भ्रमण कर हरिजनोद्धार के लिए धन एकत्रित किया । 'हरिजन' नामक एक पत्र का प्रकाशन किया गया ।

हरिजनों के उत्थान के लिए एकत्रित किए गए धन से उन्होंने हरिजनों की शिक्षा तथा उनकी आर्थिक उन्नति के कार्य किये । उन्होंने मंदिरों के पट, जो केवल सवर्णो के लिए खुले थे, हरिजनों के लिए खुलवाए । हरिजनों के प्रति समाज में जो धृणा और तिरस्कार की भावना थी उसे समाप्त करने के लिए गाँधीजी ने अपने तरीके से प्रयास किए । उनका यह तरीका आध्यात्मवादी तरीका था ।

गांधीजी एक महात्मा थे । वे मानव और आत्मा-आत्मा में कोई भेद नहीं मानते थे । इस आधार पर समाज के सबसे पिछड़े और अविवेकपूर्ण धृणा के पात्र हरिजन को उन्होंने अपने बराबर माना । उन्होंने स्पष्ट शब्दों में उद्घोषणा की "यदि मुझे अगला जन्म मिले तो हरिजन के घर में मिले ।" आध्यात्मिक आधार पर ही उन्होंने दलितों को 'हरिजन' की संज्ञा दी थी ।

महात्मा गाँधी अपने आश्रम में रहने वाले व्यक्तियों से हरिजन का कार्य यानी मलमूत्र उठाने का कार्य कराते थे ताकि मलमूत्र उठाने के धंधे के साथ जुड़ी धृणा की भावना समाप्त हो और यह भावना पैदा हो कि गंदगी साफ करना गंदा कार्य नहीं अपितु अच्छा कार्य है । गंदा कार्य है गंदगी करना या फैलाना ।

गांधीजी की विचारधारा ठोस सैद्धांतिक आधार पर अवलम्बित होने के कारण लोगों को अपने अनुयायी बनने को प्रेरित करती थी और अनेक अनुयायियों को उनके साथ-साथ हरिजनों की बस्तियों में जाना होता था । इस प्रकार गाँधीजी एक आध्यात्मिक आधार पर दलितों व सवर्णो के बीच सेतु बने हुए थे ।

गांधीजी स्वयं आश्रम में झाडू लगाने का कार्य भी उसी तन्मयता से करते थे । जिस तन्मयता से वे प्रार्थना किया करते थे । इस प्रकार वे "कर्म ही पूजा है" के आदर्श वाक्य को जीवन में उतार कर दिखाते थे ।

सन् 1937 में जब राज्यों में काँग्रेस की आंतरिक सरकारे बनी तो गाँधीजी की प्रेरणा से उन्होंने दलितों के उत्थान के कार्य किये ।

महात्मा गाँधी आत्मिक शक्ति के उपाशक थे । उनकी आत्मिक शक्ति हृदय परिवर्तन में विश्वास करती थी । इसी कारण डॉ. अम्बेडकर जैसे व्यावहारिक सिद्धांतों पर विश्वास करनेवाले दलित नेता से दलितोद्धार को लेकर उनके मतभेद हुए । यह अच्छा ही हुआ कि इस मतभेद के कारण पूना पेक्ट हो गया अन्यथा जैसे गाँधीजी की सवा सौ साल जीने और उनकी लाश पर पाकिस्तान बनने जैसी भविष्यवाणीयाँ गलत सिद्ध हुई वैसी ही छूआछूत और ऊँच-नीच मिटाने की बात भी कोई ठोस आधार पाने से रह जाती ।

महात्मा गाँधी का अस्पृश्यता निवारण संबंधी एक कथन है - "अस्स्पृश्यता कानून के बल से भी दूर नहीं होगी । वह तभी दूर होगी जब हिन्दूओं का बहुमत इस बात को अनुभव कर ले कि अस्पृश्यता ईश्वर और मनुष्य के विरूद्ध एक अपराध है और इसके लिए वह लज्जित है । दूसरें शब्दों में वह हिन्दूओं के हृदय परिवर्तन अर्थात् हृदय शुदधि की एक क्रिया है ।"[50] और हृदय परिवर्तन कोई सहज बात नहीं ।

ज्योति बा फूले :

महाराष्ट्र में उन्नीसवीं शताब्दि में जिन समाज सुधारकों ने महिलाों पिछड़े वर्ग एवं अछूत लोगों में अधिकारों की चेतना जगाने और उन्हें ऊपर

उठाने का प्रयत्न किया उनमें ज्योति बा फुले का महत्वपूर्ण स्थान है । महात्मा फुले पहले व्यक्ति है जिन्होंने महिलाओं के लिए महाराष्ट्र में पहला विद्यालय स्थापित किया ।

जन्म के आधार पर जाति और जाति के आधार पर मनुष्य मनुष्य के बीच ऊँच-नीच बरतने वाली पारम्परिक समाज व्यवस्था को ज्योति बा फूले सरासर अन्यायपरक मानते थे । इस अन्यायपरक व्यवस्था का समर्थन करनेवाली मनुस्मृति की उन्होंने कटु आलोचना की । 'ब्राह्मण सदैव ब्राह्मण रहेगा और शूद्र सदैव शूद्र' इस परंपरा की पुष्टि करनेवाले ग्रंथों व मतों के विरोध में उन्होंने लेखन एवं आंदोलन किए ।

शिम्फी, कुम्भार, नावी, कोली, महार, मांग, माली, चमार आदि निम्नवर्गीय जातियों के उत्थान के लिए ज्योति बा फूले ने जीवन पर्यन्त कार्य किया । उन्होंने इनके लिए विद्यालय स्थापित किये, शूद्रों को अपने विरूद्ध हो रहे अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार किया ।

डॉ. अम्बेड्कर ने जिन महापुरूषों से प्रेरणा प्राप्त की उनमें महात्मा फूले भी एक है । डॉ. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'हू वर द शूद्राण ?' महात्मा फूले को इन शब्दों के साथ समर्पित किया है । "आधुनिक भारत में महान शूद्र महात्मा ज्योति बा फूले (1829-1890) की स्मृति में, जिन्होंने निम्न वर्गीय हिन्दूओं की अंतरात्मा को उच्च वर्ग के दलन के विरुद्ध जगाया और इस मत का प्रतिपादन किया कि भारत के लिए विदेशी शासन से मुक्ति का प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि सामाजिक प्रजातंत्र का प्रश्न ।"

डॉ. भीमराव रामजी अम्बेड्कर :

डॉ. अम्बेड्कर अपने उच्च व्यक्तित्व और कर्तृत्व के कारण दलितों के मसीहा के रूप में याद किए जाते है । वे स्वयं दलित वर्ग से संबंधित थे । अपने व्यक्तित्व को उन्होंने इतनी उच्चता प्रदान की जिससे वे दलित वर्ग के आदर्श पुरूष के रूप में समाहत हुए । दलित वर्ग के लिए भारतीय संविधान में विशेष प्रावधान किए जाने में भी उनका बहुत बड़ा योगदान रहा ।

डॉ. अम्बेडकर ने उच्च शिक्षा विदेश में ग्रहण की । उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम.ए., पीएच.डी., इग्लैंड में एम.एस.सी. एवं डी.एस.सी. की डिग्री प्राप्त की । उच्च शिक्षा से सम्बन्धित होकर उन्होंने बम्बई उच्च न्यायालय में वकालत करने के साथ-साथ समाज सेवा, राजनीति, लेखन एवं शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया ।

1924 में उन्होंने दलितों की नैतिक व आर्थिक उन्नति के लिए "बहिष्कृत हितकारी सभा" की स्थापना की । 1927 में अछूतों व अन्य हिन्दूओं के बीच सामाजिक समानता लाने के लिए 'समाज समता संघ' की स्थापना की । 1942 में 'अनुसूचित जाति फेडरेशन' नामक राजनीतिक दल का गठन किया । 1945 में उन्होंने 'पीपुल्स एज्युकेशन सोसायटी' की स्थापना की । इस सोसायटी ने बम्बई राज्य में अनुसूचित जाति के छात्रों के लिए कई कॉलेजों का संचालन किया ।

सन् 1925 से 1930 के बीच उन्होंने अछूत छात्रों के लिए चार छात्रावास चलाने आरंभ किये 1927 में उन्होंने 'बहिष्कृत भारत' नामक पाक्षिक पत्र प्रकाशित किया । इसी वर्ष उन्होंने मांगड में 'चंददातलेन' नामक सार्वजनिक तालाब से अछूतों को पानी भरने के नागरिक अधिकार की प्राप्ति के लिए सत्याग्रह किया । इस घटना से संबंधित मुकदमें में बम्बई हाईकोर्ट में सन् 1937 में उनको विजय मिली । 1930 में नासिक में मंदिर प्रवेश के लिए सत्याग्रह किया ।

सन् 1931 में गांधीजी की इच्छा के विपरीत उन्होंने गोलमेज सम्मेलन में अछूतों के लिए पृथक मतदान के अधिकार की मांग की । 1946 में अनुसूचित जाति के लिए सरकारी सेवाओं में आरक्षण विशेष आर्थिक सहायता प्राप्त करने में वे सफल हुए ।

हिन्दू धर्म की अन्यायपरक ऊँच-नीच व छूआछूत की सामाजिक परंपरा से विक्षुब्ध होकर 1935 में उन्होंने नासिक जिले के येवला में सार्वजनिक रूप से हिन्दू धर्म त्याग देने की घोषणा की । तत्पश्चात् वे बौद्ध हो गए । डॉ. अम्बेड़कर जैसे विद्वान, न्यायविद् और समाज सुधारक द्वारा इस प्रकार हिन्दू धर्म का परित्याग करना हिन्दू धर्म की घोर विसंगतियों और सामाजिक पाखण्ड की एक तीव्र प्रतिक्रिया थी । जिस व्यक्ति के भारत का संविधान रचने की सामर्थ्य थी उसे मात्र इसी कारण एक निरक्षर भट्टाचार्य एवं संस्कारहीन ब्राह्मण से नीचा माना जाता रहे कि वह एक महार के घर पैदा हुआ है । इससे बड़ा सामाजिक अन्याय और क्या होगा और इस अन्याय का प्रतिकार डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म त्याग कर किया ।

डॉ. अम्बेडकर दलितों के लिए एक इतिहास पुरूष और मसीहा के रूप में अवतरित हुए थे, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

महाराजा सयाजीराव गायकवाड :

गुजरात के वडोदरा के महाराज सयाजीराज गायकवाड ने अपने जन कल्याण और सुधारवादी कार्यक्रमों से दलितों को प्रोत्साहित किया । जाति भेद को स्थान नहि दिया । नौकरियों में सर्व जातियों को स्थान दिलाकर सभी की बुद्धिमता और कर्तृत्व का लाभ प्राप्त हो, इस तरह का महाराजा का दृष्टिकोण था । वे अच्छे कार्यो की सराहना भी करते थे । जैसाकि, 'खेरालु के चौधरियों को 'देसाई' का इल्काब देकर नवाजेश की थी' तो ऊँझा के बुनकर (वणकर) परिवार (अंबालाल धनजीभाई) को 'राजरत्न' का इल्काल दिया था ।

26 सितम्बर 1909 ई.स. पूना में एक स्कूल कार्यक्रम में अध्यक्ष के नाते महाराजा सयाजीराव गायकवाड ने दलितों को मार्गदर्शन दिया था । जिस स्कूल का संचालन दलितों के हाथ में था । गायकवाड के समय में हिन्दू शिक्षक अछूतों को पढ़ाने से इन्कार कर देते थे, इससे दलित पाठशालाओं के लिए क्रिश्चन और मुसलमान शिक्षकों की मदद बाहर से माँग कर भी अछूतों को पढ़ाया । उन्होंने दलितों का उद्धार करके प्रगति की नई दिशा दिखाई और दुर्दशा से मुक्ति दिलाने के लिए इस तरह की मदद की । गिरे हुए लोगों को उपर उठाने के लिए केवल कानून समर्थ नहीं होता, उसके साथ प्रत्यक्ष उनकी सहायता करने और उद्धार की सुविधाएँ उपलब्ध कर देने की जरूरत उन्होंने जानी थी । इसलिए उन्होंने दलितों के लिए आवश्यक शिक्षा निवास व्यवस्था, द्रव्य सहायता, नौकरी वगैरह सुविधाएँ पर जोर देने का निश्चय किया था । बड़ौदा से लेकर पालनपुर तक का क्षेत्र आज भी गायकवाड के प्रशासन को याद करता है ।

सन् 1913 में बाबासाहब अम्बेड्कर को शिष्यवृत्ति देकर अमेरिका पढ़ने के लिए गायकवाड ने ही भेजा था । जगह-जगह पर अत्यंज पाठशालाओं को प्रारंभ करके, दलितों को उच्च्य स्थानों पर नौकरी रखकर दलित समाज के हृदय में अपूर्व स्थान जमा दिया था । ऐसे उदार दिल के रामजी को दलित कैसे भूल सकें ?

स्वातंत्र्यवीर सावरकर :

बेरीस्टर सावरकर सामाजिक क्रांतिकारी थे । जाति-विरहित नवसमाज निर्माण का उनका दृष्टिकोण था । अस्पृश्यता के खिलाफ बुलंद आवाज उठायी । विषमता, वर्णवर्चस्व, जातिभेद पर उन्होंने तीव्र हमले किए । वे कहते थे कि अस्पृश्यता की रुढ़ि आत्मघातक है । अपने ही बंधुओं को पशुओं से

भी निम्न समझना मनुष्य जाति का अपमान है । इसलिए मानवता की दृष्टि से अस्पृश्यता का उच्छेदन होना जरूरी है ।

उन्होंने महाराष्ट्र में रत्नागिरि ज़िले में लेखन कार्य, मंदिरों में प्राणप्रतिष्ठा, दलितों के मंदिर प्रवेश आंदोलन का प्रचार एवं आचार भी किया। सावरकर के मतानुसार, "दलितोद्धार के लिए धर्मपरिवर्तन - जाति परिवर्तन की जरूरत नहीं, हिन्दू रहकर ही यही उद्धार और जागरण संभव है । जन्मजात अस्पृश्यता और जातिभेद को समूल उखाड़ने का बीड़ा हमने प्रारंभ से उठाया है । हिन्दू संगठन का वह एक अनिवार्य अंग है सावरकर हिन्दूत्व के घेरे को उल्लंघित न करते हुए दलितोद्धार की संभावना मानते थे ।"

संदर्भसूची

1. 'गुजरात' दिपोत्सवी अंक-2056, पृ.89
   गुजरात दलित साहित्य और पत्रकारत्व
2. हिन्दी साहित्य में दलित चेतना
   डॉ. आनंद वास्कर, पृ.18
3. 'अस्मितादर्श' मार्च 1969, पृ.83
4. 'आम्ही' दिपावली अंक-1973, पृष्ठ-77
5. 'मासिक सत्यकथा', सदा करोड़ - दलित साहित्याच्या निमिताने, जुलाई-1970
6. 'अस्मितादर्श', प्रा. म. भी. चिटणीस, लेखक मेला औरंगाबाद-1974
7. निरालेमन, पृ.25
8. Seminar of Dalit Literature
9. भारतीय साहित्य में दलित एवं स्त्री, संपादक - चमनलाल, पृष्ठ-20
10. हिन्दी साहित्य में दलित काव्यधारा, लेखक - माताप्रसाद, पृष्ठ-2
11. वही
12. हिन्दी साहित्य में दलित काव्यधारा, लेखक - माताप्रसाद, पृष्ठ-2
13. दलित साहित्य की पृष्ठभूमि, लेखक - माताप्रसाद, पृष्ठ-19
14. वही
15. 'समाजमित्र' अगस्त-1996
    संपादक - प्रा. यशवंत वाघेला, पृष्ठ-102
16. ऋग्वेद-10, 90-12
17. शूद्रों का प्राचीन इतिहास, डॉ. रामशरण शर्मा, पृष्ठ-22
18. हू वर द शूद्राज, डॉ. अम्बेड़कर, पृ.239
19. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, डॉ. रामजी उपाध्याय, पृष्ठ-67,

20. भीमराव रामजी अम्बेड़कर, डॉ. जी. एस. लोखण्डे, पृष्ठ-92,93

21. डॉ. ए. ए. गोल्डन वेजर कोलम्बिया युनिवर्सिटी, मेगेझीन, मिलिन्द कॉलेज ऑफ आर्टस, खण्ड-4, अप्रैल-1966

22. अनुसूचित जातियों - जनजातियों माटेनी बंधारणीय जोगवाईओं - उत्पत्ति अने अमल - पूर्व लोकसभा - सदस्य, खेमचंदभाई चावड़ा, पृष्ठ-9,10

23. दलित साहित्य सिद्धांत आणि स्वरूप, लेखक - यशवंत मनोहर, पृष्ठ-55

24. 'विदित' ले. हरीश मंगलम्, पृष्ठ-85

25. पिछ्डे वर्ग आयोग की रिपोर्ट, भाग-1, भारत सरकार

26. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, लेखक - माताप्रसाद, पृष्ठ-3

27. सौराष्ट्रनां हरिजन भक्त कवियों, संपादक - नाथालाल गोहिल, पृष्ठ-2

28. दलित क्रांति दर्शन, लेखक - रामलाल विवेक

29. सौराष्ट्रनां भक्त कवियों, सं. डॉ. दलपत श्रीमाळी

30. दलितायन मरमट, लेखिका - अवंतिका प्रसाद, पृष्ठ-18

31. दलित युवाओं में परिवर्तित दृष्टिकोण, ले.जगदीश राठौड, पृष्ठ-4

32. हिन्दी उपन्यासों में दलित वर्ग, डॉ. कुसुम मेघवाल, पृष्ठ-93

33. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ-203

34. भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या, लेखक - जगजीवनराम, पृष्ठ-76

35. वही, पृष्ठ-77

36. वही, पृष्ठ-77

37. निराला की साहित्य साधना, डॉ. रामविलास शर्मा, पृष्ठ-28

38. भारतीय राष्ट्रवाद एवं आर्यसमाज आंदोलन, डॉ. विजेन्द्रपाल सिंह, पृष्ठ-61

39. वही, पृष्ठ-62

40. पालिन एम. मदर, "चैकिंग रिलिजियंस प्रेक्टिसेज ऑफ एन. अनटचेबिल कास्ट", शोध लेख - अप्रैल-1960, पृष्ठ-279

41. इण्डियन सोश्यल रिफार्मर, भाग-28, पृष्ठ-150

42. जाँति-पाँति तोडक मण्डल, सामान्य परिचय, लाहौर-1939, पृष्ठ-1

43. अंतराष्ट्रीय आर्य लीग के दिल्ली स्थित कार्यालय में उपलब्ध पाण्डुलिपि विवरण

44. वही

45. वही

46. गृह-राजनीतिक विभाग कारवाई, खण्ड-बी, जनवरी-1909

47. 'प्रतिवेदन', भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस का तैतीसवाँ, अधिवेशन, पृष्ठ-128, 129

48. भारतीय राष्ट्रवाद और आर्यसमाज आंदोलन, डॉ. विजेन्द्रपाल सिंह, पृष्ठ-77

49. इण्डियन रिव्यू - मई - 1910

50. हरिजन सेवक - 23/9/1939, पृष्ठ-255